भरहुत शिल्प में सिरिमा देवता

नीरज कुमार पाण्डेय

भरहुत ग्राम (24 उत्तरी अक्षांश एवं 80 पूर्वी देशान्तर) मध्यप्रदेश के सतना से 15 कि.मी. दक्षिण एवं उचहरा रेलवे स्टेशन से 10 कि.मी. उत्तरपूर्व में अवस्थित है। कभी यहाँ शुंग काल (ई.पू. 2री शती) का एक विशाल एवं सुन्दर बौद्ध स्तूप विद्यमान था। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के प्रथम महानिदेशक सर अलेक्जेन्डर कनिंघम ने सर्वप्रथम 1873 ई. में भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला के इस महत्त्वपूर्ण स्थल से विद्वानों का परिचय कराया, यद्यपि कनिंघम के समय लगभग पूरा स्तूप नष्ट हो चुका था। केवल एक ओर 10 फीट लम्बा और 6 फीट ऊँचा भाग ही शेष था, जबकि मूलरूप में स्तूप का व्यास ल0 68 फीट था। कनिंघम को वेदिका के 47 स्तम्भ प्राप्त हुए थे। 35 तो अपने मूल स्थान पर थे और 12 भटनमारा, लिथौरा आदि पास के गावों से ढूँढने पर मिले थे। बाद में पं0 बृजमोहन व्यास ने भरहुत तोरण एवं वेदिका के 53 खण्ड इलाहाबाद संग्रहालय के लिए अपने प्रयत्नों से प्राप्त किये।[1] कनिंघम द्वारा प्राप्त कलाकृतियाँ इंडियन म्यूजियम, कोलकाता में संग्रहित हैं। यहीं की कुछ अन्य कलाकृतियाँ अन्यान्य संग्रहालयों में तथा कुछ निजी संग्रहों में भी विद्यमान हैं।

इस स्तूप के वेदिकास्तम्भ सुन्दर स्त्री मूर्तियों द्वारा सुशोभित थे, जिन पर उनके नाम भी अंकित थे। इंडियन म्यूजियम में संग्रहित ऐसे ही एक अभिलिखित स्तम्भ पर एक स्त्री मूर्ति उत्कीर्ण है। अभिलेख में इसे 'सिरिमा देवता' कहा गया है (चित्र 27.1, 27.2)। इस प्रतिमा के अधोवस्त्र एवं अन्य आभूषण दर्शनीय है। स्त्री के उठे हुए दाहिने हाथ में कदाचित् कमल पुष्प था, जिसका अब केवल नाल भाग शेष है। अलंकारों में शिरोभूषण, कानों के कुण्डल, भुजबन्द, लगभग केहुनी तक पहनी हुई चूड़ियाँ, आठ लड़ियों वाली मेखला एवं पाँवों के नूपुर उल्लेखनीय हैं। स्त्री के गले में पड़े आभूषणों में एक अर्द्धचन्द्राकार, दूसरा त्रिरत्न के पंक्ति वाला और तीसरा मनकों से निर्मित एक अवलि है।

यद्यपि इस प्रतिमा पर उसके नाम के रूप में 'सिरिमा देवता' अंकित है, तथापि उसकी ठीक-ठीक पहचान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार यह 'श्री माँ' अर्थात् लक्ष्मी है जिसका विस्तृत वर्णन हमें ऋग्वेद के श्रीसूक्त में मिलता है।[2] प्रो. वी.एम. बरुआ ने वेदिकास्तम्भों पर अंकित चार स्त्री मूर्तियों को पहचानने का प्रयत्न किया है। इनमें से तीन तो निश्चित रूप से चूलकोका, महाकोका एवं सिरिमा देवता हैं। चौथी प्रतिमा का नाम स्पष्ट नहीं है। बरुआ इन चार मूर्तियों को *ललितविस्तर* में उल्लिखित श्रीमती, लक्ष्मीमती, यशप्राप्ता तथा यशोधरा से मिलाते हैं जो दक्षिण दिशा की देवियाँ हैं और आदर्श गृहणियों के रूप में स्वीकृत हैं। स्पष्ट रूप में यहाँ की श्रीमती और भरहुत की सिरिमा में नाम का साम्य हैं।[3] सी. शिवराममूर्ति सिरिमा को समृद्धि की देवी कहते हैं[4] पर

चित्र 27.1: सिरिमा देवता भरहुत दूसरी शती

चित्र 27.2: अभिलेख युक्त सिरिमा की आकृति

चिन्तामणि कर के अनुसार यह प्राचीन मातृदेवी हैं।[5] इसकी ठीक-ठीक पहचान के लिए बौद्ध साहित्य का गहन अध्ययन अपेक्षित है जिसमें सिरिमा देवता के विषय में विस्तृत और रोचक सामग्री मिलती है। प्रस्तुत लेख में इसी परिप्रेक्ष्य में इस देवता को पहचानने का प्रयास किया गया है।

बौद्ध साहित्य के अनुसार सिरिमा राजगृह की नगरवधू सालवती एवं राजा बिम्बिसार के पुत्र अभयराजकुमार की पुत्री थी। उसका भाई जीवक राजगृह का प्रसिद्ध चिकित्सक एवं राजवैद्य था। अपनी माता के पश्चात् सिरिमा राजगृह की नगरवधू बनी।[6]

धम्मपद के विवरणानुसार राजगृह में पूर्ण नाम का एक किसान निवास करता था। उसकी पुत्री का नाम उत्तरा था। एक दिन पूर्ण और उसकी पत्नी ने बुद्ध के शिष्य सारिपुत्र को भोजन दान दिया जो गहरी समाधि से उठे थे। इस पुण्य कर्म से पूर्ण को अपने खेत में गड़ा हुआ प्रर्याप्त सोना मिला जिससे वह बहुत धनवान हो गया और राजा ने उसे सार्वजनिक रूप से बहुधन श्रेष्ठी घोषित कर दिया। पूर्ण और उसका परिवार बुद्ध एवं संघ के प्रति बहुत श्रद्धा रखता था। पूर्ण ने अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह एक धनी व्यक्ति सुमन के पुत्र से कर दिया। यह परिवार बुद्ध का उपासक नहीं था जिससे उत्तरा वहाँ प्रसन्न नहीं थी। कुछ समय बाद उसने अपने पिता को संदेश भेजा कि आपने मुझे किस कारागार में डाल दिया है? यहाँ किसी भिक्षु के दर्शन नहीं होते हैं और न ही मैं किसी भिक्षु को दान दे पाती हूँ। यह सुनकर उसके पिता बहुत दुखी हुए और उन्होंने उत्तरा के पास 15 हजार कार्षापण के साथ यह संदेश भिजवाया कि ''राजगृह की प्रसिद्ध गणिका सिरिमा जो एक रात्रि के साहचर्य के लिए एक हजार कार्षापण लेती है, उसे 15 दिनों के लिए वह अपने पति की सेवा-सुश्रुषा के लिए नियुक्त कर दे और इन 15 दिनों में वह अपनी इच्छानुसार धर्मकार्य करे।'' पति की आज्ञा लेकर उत्तरा ने सिरिमा को बुलाकर यह तय किया कि 15 दिनों तक वह उत्तरा की जगह पत्नी के रूप में रहेगी।

इस अवधि में उत्तरा ने बुद्ध के उपदेश सुने एवं उनके भिक्षु संघ को दान भी दिया। पन्द्रहवें दिन पाकशाला में भोजन बनाने के क्रम में जब उसका पूरा शरीर पसीने से भीग गया, तब संयोगवश उसके पति ने उसे अपने शयनकक्ष के वातायन से देखा और मुस्कुराकर स्वयं से कहने लगा, ''यह कितनी मूर्ख है। जीवन का आनन्द कैसे लिया जाता है यह भी नहीं जानती। केवल भिक्षुओं को दान देने में लगी रहती है।'' सिरिमा ने उसे मुस्कुराते हुए देखा। ईर्ष्यावश वह अपने आप को रोक न सकी। पाकशाला में जाकर उसने एक पात्र में उबलते हुए घी को भरा और उत्तरा के शरीर पर डालने के उद्देश्य से आगे बढ़ी। उत्तरा ने उसे आते हुए देखकर भी अपने अन्दर किसी प्रकार के विद्वेष को उत्पन्न नहीं होने दिया। उसने सोचा कि सिरिमा के कारण ही 15 दिनों तक मैं बुद्ध के प्रवचन सुन सकी तथा भोजनदान एवं अन्य पुण्य अर्जित कर सकी। अतएव ''यदि मेरे ह्दय में सिरिमा के प्रति तनिक भी विद्वेष की भावना न हो तो यह घी मुझे न जला पाये।'' सिरिमा द्वारा खौलता घी उसके शरीर पर डालने पर भी उसके शरीर को थोड़ा भी नुकसान नहीं हुआ। सिरिमा के मन में विचार आया कि संभवतः घी के ठंडा होने से ऐसा हुआ। वह दोबारा गरम घी लाने जा रही थी, उसी समय उत्तरा की दासियों ने उसे पीटना प्रारंभ किया। उत्तरा ने सिरिमा को उनसे बचाया और उसका उपचार भी कराया।

सिरिमा को अपनी गलती का भान हुआ और वह उत्तरा के चरणों में गिरकर क्षमा याचना करने लगी। उत्तरा

ने कहा—'तुम मेरे पिता से क्षमा माँगो'। सिरिमा उसके पिता पूर्ण से क्षमा माँगने को तत्पर हुई, तभी उत्तरा ने कहा—'सुनो, पूर्ण तो शरीर मात्र देने वाले पिता हैं। जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति दिलाने वाले वास्तविक पिता तो भगवान बुद्ध हैं।' तब उत्तरा के सुझावानुसार सिरिमा ने बुद्ध और भिक्षुसंघ के लिए भोजन तैयार किया और उचित भेंट देकर स्वयं एक तरफ बैठ गई। भोजनोपरान्त सिरिमा बुद्ध के चरणों में गिरकर अपना सम्पूर्ण दोष स्वीकारते हुए क्षमा करने की प्रार्थना करने लगी, अन्यथा उत्तरा उसे क्षमा नहीं करेगी। करुणामय बुद्ध के आदेशानुसार उत्तरा से सिरिमा को क्षमा मिल गई।[7]

इस घटना के बाद सिरिमा बुद्ध एवं संघ के प्रति पूर्ण समर्पित हो गई। वह मुक्तहस्त से संघ को दान देने लगी। उसके यहाँ से प्रतिदिन आठ भिक्षुओं को भोजन दान दिया जाता था। एक बार भिक्षुगण विहार में सिरिमा के अलौकिक सौन्दर्य एवं उसके द्वारा दिये जाने वाले स्वादिष्ट भोजन की चर्चा कर रहे थे। उनके वार्तालाप को सुनकर वहीं बैठा एक तरुण भिक्षु सिरिमा को देखे बिना ही उस पर आसक्त हो गया। दूसरे दिन वह अन्य भिक्षुओं के साथ सिरिमा के घर भिक्षाटन के लिए गया। उस दिन वह बीमार थी किन्तु बौद्ध संघ के प्रति सम्मान के कारण वह स्वयं भिक्षा देने घर से बाहर आयी। तरुण भिक्षु उसकी सुन्दरता देखकर मुग्ध हो विचार करने लगा—'यह रुग्ण अवस्था में भी बिना किसी श्रृंगार के इतनी सुन्दर दिखाई दे रही है तो इसका मूल सौन्दर्य कितना अद्भुत होगा।' भिक्षा लेकर भिक्षुगण विहार में वापस लौट आये किन्तु तरुण भिक्षु अभी भी सिरिमा के आकर्षण से मुक्त नहीं हो सका। संयोगवश उसी रात्रि में सिरिमा की मृत्यु हो गई। राजा बिम्बिसार ने इसकी सूचना बुद्ध को भिजवायी। बुद्ध ने राजा को सलाह दी कि तीन दिनों तक सिरिमा का दाह संस्कार न किया जाय किन्तु जीव-जन्तुओं से उसके शरीर की रक्षा अवश्य की जाय। चौथे दिन बुद्ध की आज्ञानुसार नगरवासियों एवं भिक्षुओं को सिरिमा के दर्शन के लिए श्मशान चलने का निर्देश दिया गया। वह आसक्त तरुण भिक्षु भी अन्य लोगों के साथ श्मशान गया।

सिरिमा की मृत्यु के चार दिन व्यतीत हो गये थे। फलतः शरीर की सुन्दरता जाती रही। शरीर फूलकर विकृत हो गया था और उससे दुर्गन्ध आने लगी थी। राजा बिम्बिसार ने बुद्ध के निर्देशानुसार घोषणा करवायी कि "यह राजगृह की सबसे सुन्दर गणिका सिरिमा है। जिसकी इच्छा हो वह एक हजार कार्षापण देकर इसे ले जाये।" घोषणा के पश्चात् कोई भी उसे लेने को तैयार नहीं हुआ। फिर इस राशि को घटाकर पाँच सौ, ढाई सौ, दो सौ और अन्त में एक कपर्दिका (कौड़ी) करने पर भी कोई आगे नहीं आया। यहाँ तक कि बिना कुछ दिये ले जाने के प्रस्ताव पर भी कोई हिला-डुला नहीं। उचित अवसर देखकर बुद्ध ने कहा—"शरीर का धर्म देखो, जब तक सिरिमा का शरीर चलायमान था, लोगों में एक दिन के लिए एक हजार कार्षापण देने को होड़ लगी रहती थी पर आज निःशुल्क दिये जाने पर भी कोई उसके शरीर के पास जाने को तैयार नहीं है। ऐसा है यह क्षणभंगुर नाशवान शरीर। ऐसे शरीर से कैसी आसक्ति और उससे कैसा लगाव!" बुद्ध के इन वचनों को सुनकर उस तरुण भिक्षु के ज्ञानचक्षु खुल गये और सिरिमा के प्रति उसका अनुराग समाप्त हो गया।[8]

मृत्यु के पश्चात् अपने अच्छे कर्मों के कारण सिरिमा देवलोक में 'देवता' के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। *विमानवत्थु*[9] के सिरिमाविमानवण्णना से ज्ञात होता है कि जब बुद्ध सिरिमा के मृत शरीर के समक्ष जन समुदाय को उपदेश दे रहे थे तभी वह देवलोक से पाँच सौ रथों के साथ आकाश मार्ग से वहाँ आयी और रथ से उतरकर बुद्ध को प्रणाम किया।

उसी समय बुद्ध की आज्ञा लेकर वङ्गीस नामक भिक्षु ने सिरिमा से पूछा—"अपने शुभ्र वर्ण से चमकते हुए तारे के समान चारों दिशाओं को आलोकित करने वाली हे देवते! मनुष्यों को प्रिय लगने वाले सारे भोग आपको प्राप्त हैं। मनुष्य के रूप में आपने कौन से पुण्य कर्म किये जिसके फलस्वरूप आपको देवलोक में यह सब भोगने का अवसर प्राप्त हुआ?" सिरिमा ने उत्तर दिया—"हे भिक्षु! पहाड़ियों से आच्छादित, सुव्यवस्थित ढंग से बसाई गई राजगृह नामक नगरी की नगरवधू सिरिमा के रूप में मैं जानी जाती थी। जब से मैं बुद्ध के शरण में गई, मुझे इस दुःख से परिपूर्ण नश्वर संसार का भान हुआ और मैं बुद्ध के बताये मार्ग पर चलने लगी। इसी कारण मैं 'देवता' के रूप में देवलोक में प्रतिष्ठित हुई जिसके फलस्वरूप मेरा वर्ण शुभ्र है और मैं दिशाओं को आलोकित कर रही हूँ।"[10]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि राजगृह की बुद्धकालीन नगरवधू सिरिमा बौद्ध धर्म में अपनी श्रद्धा के कारण मृत्यु पश्चात् देवलोक में प्रतिष्ठित हुई। इन्हें ही भरहुत के कलाकारों ने अभिलेख के साथ सिरिमा देवता के रूप में अंकित किया। स्पष्टतः प्रतिमा पर अंकित लेख में उसे दिया गया 'देवता' सम्बोधन भी पूर्ण सार्थक एवं विशेष उद्देश्य का सूचक है। अभिलेखों में अंकित 'देवता' शब्द का संकेत यह संदेश देना था कि बुद्ध के उपदेशों का अनुसरण करते हुए अच्छे कर्मों द्वारा देवलोक की प्राप्ति हो सकती है। सिरिमा के अतिरिक्त चूलकोका तथा महाकोका को भी 'देवता' कहा गया है। इसका समाधान भी अन्वेषणीय है।

संदर्भ

1. वासुदेवशरण अग्रवाल, *भारतीय कला,* वाराणसी, पृ. 139-140
2. वही, पृ. 147
3. B.M. Barua, *Bharhut,* Calcutta, 1934, p. 56
4. C. Sivaramamurti, *The Arts of India,* Harry N. Abrams, New York, 1977, p. 74
5. Chintamani Car, *Classical Indian Sculpture,* London, 1950, p. 29
6. द्रष्टव्य, G.P. Malalasekera, *Dictionary of Pāli Proper Names,* 1995, Vol. I, pp. 127-128, Vol.II, pp. 957-958, p. 1121, p. 1143
7. हृषीकेश शरण, *धम्मपद - गाथा और कथा,* Vol. 3, नई दिल्ली, पृ. 72-73
8. वही, Vol. 2, पृ. 118-119
9. विमानवत्थु का अर्थ है—देवताओं के आवासों की कथायें। यहाँ देव-कथाओं द्वारा कर्मफल के सिद्धांत का वर्णन है। देवताओं के आवास सुन्दर होते हैं। जहाँ वे रहते हैं, वह लोक भिन्न-भिन्न प्रकार के आमोद-प्रमोद से परिपूर्ण है। ऐसी मान्यता चली आ रही है कि शुभ या कुशल कर्म करने वालों की सुगति होती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए *विमानवत्थु* की रचना की गई है। देवलोक केवल कुशल कर्म करने वाले गृहस्थों के लिए होता है। भिक्षुओं के लिए देवलोक नहीं होता, उनका लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना होता है। भिक्षु कामनाओं से बहुत आगे बढ़ने का अभिलाषी होता है। *विमानवत्थु* में यही सब दिखलाया गया है। (मधुकर पिपलायन, *त्रिपिटक परिचय,* नई दिल्ली, पृ. 90)
10. *खुद्दकनिकाये परामत्थदीपनी विमानवत्थु-अट्ठकथा,* विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, महाराष्ट्र, रोमन पृ. 74-86